स्त्री विमर्श : वाद विवाद इतिहास

-डॉ. कामाख्या नारायण सिंह

शोध सारांश

स्त्री विमर्श समकालीन साहित्य में विमर्श की धार को पैनी किया है। यह भारतीय समाज की वैज्ञानिक संरचना को भी प्रभावित किया है। परन्तु ज़ब हम आधी आबादी की वर्तमान स्थिति पर विहंगम दृष्टि डालते हैं तो विमर्श के समस्त अवयव एवं मानक ध्वस्त होते दिखते हैं। घर, परिवार एवं समाज की बनावट में नारी को पूजनीय माना गया है। ऐसा कहा गया कि, जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं। इन्हें कभी श्रद्धा तो कभी यशोधरा तो कभी सती, सावित्री, सीता से लेकर कैकेयी, द्रौपदी के आधार पर परंपरागत बेड़ियों को तोड़ने एवं समाज के नये मानदण्ड निश्चित करने की सलाह दी जाती रही है। बहुत हद तक विकास एवं परिवर्तन भी अवश्य दिख जाते रहे हैं। "पिता रक्षित कौमारे, भर्ता रक्षित यौवने, रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।" यह श्लोक मनुस्मृति में है जिसमें भारतीय स्त्री के जीवन की तीन अवस्थाओं के सुरक्षा और संरक्षण की नियति दर्ज हैं। पौराणिक युग से लागू होता हुआ यह श्लोक आज तक चला आ रहा है जिसका अर्थ है कि कुंवारेपन में पिता स्त्री की रक्षा करता है तो युवावस्था में उसकी रक्षा पति के हवाले रहती है और वृद्धावस्था में सुरक्षा तथा संरक्षण की कमान उसके पुत्र के हाथ में आ जाती है।

मध्यवर्गीय स्त्रियाँ अपने अभावों और संघर्षों को अकेली झेलती हुई अक्सरहां आत्मग्रस्तता की शिकार होकर एक ख़ास तरह के 'अहं' के भीतर चली जाती हैं। यदि वह सफल हो सकी तो एक ओहदेदार नौकरी या किसी बहुराष्ट्रीय कंपनी में किसी बढ़िया पद पर बैठकर नौकर-नौकरानियों-गाड़ी-बंगलों-क्लब-पार्टियों से लैस अंततः उसी सामंती-पूंजीवाद को पोषित करने के लिए औज़ार बन जाती है या न चाहते हुए भी अभिशप्त हो जाती हैं। इस तरह वह सब कुछ पाकर भी एक ख़ालीपन, अकेलेपन और आत्मग्रस्तता से घिरती जाती हैं। स्त्री के इन संघर्षों से पूंजीवाद से साठ-गांठ किए हुए पितृसत्तात्मक समाज को दिक्कत नहीं होती; साथ ही सुधारवादियों-उदारवादियों को भी इसमें एक आड़ मिल जाती है। स्त्री मुक्ति के प्रश्नों को मध्यवर्गीय करुणा-भाववाद के दायरे से निकाल कर हमें रोज़ा लक्ज़मबर्ग की याद हमेशा करनी चाहिए। यूँ हीं नहीं फासीवादियों ने रोज़ा की हत्या कराई! रोज़ा लक्ज़मबर्ग केवल स्त्री मुद्दों के चिंतन तक महदूद नहीं थीं, राष्ट्रीयता जैसे अनेक राजनीतिक मुद्दों से उनकी सैद्धांतिक टकराहट थी।

निश्चित रूप से स्त्रीवादी चिंतन में 'सिमोन बुआ' का काम बेहद महत्वपूर्ण है। स्त्रीवाद के नाम पर हमारा जितना वर्ग-हित सिमोन के माध्यम से होता है। इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए भारतीय स्त्रीवादी विमर्शकार भी आगे बढ़े हैं। इसने मनुस्मृति और पितृसत्तात्मक के सोंच न केवल खारीज किया, बल्कि इसके लिये एक चुनौति भी प्रस्तुत की है।

बीज शब्द : स्त्रीवादी चिंतन, पितृसत्ता, मनुस्मृति, रूप-यौवन, नर-नारी समानता, मर्यादा, दमन-शोषण

भारतीय साहित्य में आधुनिक नारीवादी आन्दोलन के बावजूद वर्त्तमान भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति भारतीय साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य में स्पष्ट झलकती है। भारतीय समाज में नारी विमर्श की जहां तक बात है तो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से जो नारीवादी आंदोलन हुए उन आंदोलनों से भारतीय साहित्य

बहुत हदतक प्रभावित हुआ है। भारतीय साहित्य में आधुनिक स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की नारीवादी विचारधारा के प्रभाव को हम अनदेखा नहीं कर सकते।

डॉ. नीलिमा सिंह लिखती हैं कि "स्त्री-विमर्श में स्त्री शिक्षा की अपरिहार्यता पर जोर दिया गया और यह माना गया कि स्त्रियों की दशा सुधारने में स्त्री शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। परन्तु इस दिशा में यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार नहीं किया गया।" वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, चेतना और सर्जना के बीचों-बीच खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री-पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले ५० वर्षों में काफी काम हुआ है। मगर समाज-शास्त्र की दृष्टि से स्त्री विमर्श हिंदी साहित्य में बहुत बाद में बहस का मुद्दा बना। डॉ ओमप्रकाश लिखते हैं – सन १९७४ में 'प्रगतिशील महिला संगठन' का गठन हुआ इसके बाद महिला मुद्दों को अख़बारों पत्रिकाओं आदि में प्रमुख स्थान मिलने लगा।

अन्ततोगत्त्वा हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय उपमहाद्वीप में (श्रीलंका को छोड़ कर) वैदिक काल नारी का उत्कर्ष काल रहा है। वैदिक वाङमय में स्त्री के महत्त्व से स्पष्ट होता है कि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा कितनी महत्त्वपूर्ण थी। स्त्री का गौरव–गान, उपमा–रूपक तथा साक्षात् देवी के संस्तवनके रूप में प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद में अदिति, उषा, इडा, भारती, श्रद्धा, उर्वशी आदि वैदिक देवियों के रूप में देखी जाती रही है। 'वृहदारण्यकोपनिषद' में प्रयुक्त मातृमान (माता से शिक्षित) माता को वाणी स्वरुप माना गया है जो मातृरूप या मातृशक्ति का द्योतक है। यह सब उपनिषद् और पुराण युग तक देखा जाता है, किन्तु धीरे-धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया।

आधुनिक विश्व में स्त्री विमर्श अब कोई नया नहीं रह गया है किसी भी देश भली–भांति को जानना हो तो वहाँ के साहित्य को गम्भीरता से पढ़ा जाए, ठीक वैसे हीं "किसी भी समय व समाज की वास्तविक स्थिति जननी हो तो उसमें स्त्री की स्थिति पर विचार करना लाजमी है प्रासंगिक होगा। दलित प्रश्न कि तरह हीं नारी प्रश्न आज ज्वलन्त विषय है। वास्तविकता यह है कि ये दोनों दलित वर्ग आज अपने अस्तित्त्व और अस्मिता पर स्वयं विचार करने के लिए जागे हैं। इनकी समस्त बेचैनी मनुष्य को और अधिक मनुष्य अर्थात मानवीय बनने के प्रयत्न हैं।"[१] वस्तुतः "स्त्री विमर्श की संकल्पना किसी एक विचारधारा पर आधारित न होकर इसमें अनेक विचारधाराएं समाहित है। विभिन्न विचारधाराओं को सामने रखकर स्त्री विमर्श के सन्दर्भ में सम्मिलित रूप से यह कह सकते हैं कि स्त्री विमर्श पुरुषों के विरोध में संघर्ष न होकर जैविक सामाजिक, मानसिक, आर्थिक और राजनैतिक स्तरों पर स्त्री को जो कनिष्ठ स्थान दिया जाता है, उसे समाप्त कर पुरुषों के समान स्थान प्राप्त करके अपने अस्तित्त्व की अलग पहचान का निर्माण करता है।"[२] आज के स्त्री विमर्श के विषय में यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए कि "स्त्री का अपने अधिकारों के लिए संघर्ष, आधुनिक राष्ट्र राज्य की उपज है।"[३] भारतीय साहित्य में आधुनिक नारीवादी आन्दोलन के बावजूद वर्त्तमान भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति भारतीय साहित्य विशेषकर हिन्दी साहित्य में स्पष्ट झलकती है। भारतीय समाज में नारी विमर्श की जहां तक बात है तो बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध से जो नारीवादी आंदोलन हुए उन आंदोलनों से भारतीय साहित्य बहुत

हदतक प्रभावित हुआ है। भारतीय साहित्य में आधुनिक स्त्री विमर्श की पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की नारीवादी विचारधारा के प्रभाव को हम अनदेखा नहीं कर सकते।

हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि भारतीय उपमहाद्वीप में (श्रीलंका को छोड़ कर) वैदिक काल नारी का उत्कर्ष काल रहा है। वैदिक वाङमय में स्त्री के महत्त्व से स्पष्ट होता है कि उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा कितनी महत्त्वपूर्ण थी। स्त्री का गौरव–गान, उपमा–रूपक तथा साक्षात् देवी के संस्तवनके रूप में प्रकाशित हुआ है। ऋग्वेद में अदिति, उषा, इडा, भारती, श्रद्धा, उर्वशी आदि वैदिक देवियों के रूप में देखी जाती रही है। 'वृहदारण्यकोपनिषद' में प्रयुक्त मातृमान (माता से शिक्षित) माता को वाणी स्वरुप माना गया है जो मातृरूप या मातृशक्ति का द्योतक है। यह सब उपनिषद् और पुराण युग तक देखा जाता है, किन्तु धीरे-धीरे समय चक्र के परिवर्तन के कारण नारी के पराभव और शोषण का युग प्रारम्भ हो गया। भारतीय साहित्य के सन्दर्भ हमें यह मानने में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए कि संस्कृत साहित्य के पूर्वार्द्ध तक स्त्री समाज में एक शक्ति–स्वरूपा के रूप में पूजित थी। परन्तु, उत्तरोत्तर संस्कृत साहित्य में भरत के 'नाट्य–सूत्र' तथा वात्स्यायन के 'कामसूत्र' जैसे ग्रंथों के पश्चात् जो ग्रन्थ लिखे गए उनमें स्त्री को एक नायिका के रूप में देखा गया जिससे कालांतर में उसके रूप–लावण्य का सौन्दर्यीकरण तथा उसके रूप–गंध से रस निचोरा गया और रही–सही कसर 'मनु स्मृति' ने पूरा कर दिया। 'मनु स्मृति' के पश्चात् भारतीय समाज पूर्णतया पितृसत्तात्मक समाज के रूप में उभरा जहाँ स्त्रियों पर शोषण, उत्पीड़न, अत्याचार, अन्याय अमानवीय व्यहार देखे जा सकते हैं। इतना हीं नहीं इन स्त्रियों को दलितों और सवर्णों में बाँट दिया गया जिससे स्त्रियाँ और भी कमजोर हुई। वृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क कहते हैं – "यदि वह नारी (जिसे कोई उपभोग करना चाह रहा हो) जो पुरुष के उपभोग की कमाना पूर्ण नहीं कर सकती तो पुरुष उसे उपहार द्वारा प्रलोभित कर अपने बस में कर सकता है। यदि फिर भी वह सम्भोग में सहयोग नहीं करती तो उसे बल से, छल से आयत्त किया जा सकता है। रामायण और महाभारत युग में यह स्पष्ट झलकता है। दशरथ का बहु-पत्नित्त्व और कुंती और द्रौपदी इसके सर्वश्रेष्ठ उदहारण हैं। इस प्रकार से कालान्तर में सामन्तीय युग में स्त्री पुरुष के संपूर्णतः अधीन हो गयी विशेष कर भारत में इस्लाम के प्रवेश के बाद स्त्री सत्ता और बाहुवल, शक्ति प्रदर्शन तथा सुविधा भोगी समाज के केन्द्र में आई।

कौटिल्य (३७१-२८३ ई.पू) अपने 'अर्थशास्त्र' में लिखते हैं- "बच्चा स्त्री का हीं होता है न कि पुरुष (पति) का। पुरुष (पति) अनेकों हो सकते हैं पर बच्चा माँ (स्त्री जो जननी है) का हीं कहलायगा।" यह सब इस बात का द्योतक है कि उस समाज में बहु-पतित्त्व प्रथा प्रचलित रही होगी। आज भी दुनिया के बहुसंख्यक आदिवासी समाज में यह प्रथा प्रचलित है। वस्तु सत्य यह कि संतान के ऊपर से अधिकार खोते जाने की क्रमबध्यता में स्त्री कालांतर में पुरुष के लिए भोग सामग्री मात्र रह गई। कौटिल्य के समकालीन अरस्तू (३८४-३२२ ई.पू.) मानते थे दासों का होना अनिवार्य है, कारण दासों के कन्धों पर हीं सभ्य संसार पनप सकता है। अरस्तु स्त्री को भी दास की श्रेणी में हीं रखते थे।

१९ वीं सदी में मार्क्स और एंगेल्स का विचार था कि "स्त्री–मुक्ति की दिशा में पहला कदम यह होना चाहिए कि स्त्री–मजदूरों की वर्ग–चेतना को उन्नत किया जाए, सामाजिक–राजनैतिक जीवन में उनकी भागीदारी लगातार बढ़ाई जाए और उन्हें मजदूरों के संघर्ष-आन्दोलनों में किया जाए।" यही "स्त्री–मजदूरों के श्रम–संरक्षण सम्बन्धी, पहले इन्टरनेशनल के दो प्रस्तावों ने आगे चलकर सर्वहारा नारी आन्दोलन के विकास का सैद्धान्तिक

आधार तैयार करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।"[४] कार्ल मार्क्स १२ दिसंबर १८६८ ई. को कुगेलमान को लिखे अपने पत्र में कहते हैं- इतिहास का जिसे लेशमात्र भी ज्ञान है वह जनता है कि स्त्री जीवन के खमीर बिना महान सामजिक परिवर्तन असंभव है। सच्ची बात तो यह है कि सुंदरियों की (जिनमें असुन्दारियाँ भी आ जाती है) सामजिक स्थिति से समाज के उन्नति को सही तरीके से नापा जा सकता है। कार्ल मार्क्स एक अन्य स्थान पर कहते हैं- समाजवाद तो क्या पुख्ता और सम्पूर्ण लोकतंत्र की बात भी तब तक नहीं हो सकती, जब तक कि स्त्रियाँ अपना सही और स्थायी स्थान ग्रहण न कर ले, न केवल राजनैतिक जीवन में, बल्कि समाज के हर क्षेत्र में। लेनिन ने एक बार विदुषी क्रान्तिकारिणी क्लारा जैटकिन से कहा था कि स्त्रियों की अग्रगति के बिना हम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते। आदिम समाज स्त्रियों को न मात्र पूजता था वरन स्त्री समाज में उच्च स्थान की अधिकारिणी थी। स्थिति यह थी कि आदिम समाज में स्त्री-पुरुष के बीच अबाध यौन संपर्क से उत्पन्न नव-प्रजन्म अपने पिता को वह वरीयता या सम्मान नहीं देता था जो माँ को देता था। उसका परिचय अपनी माता से था। वैदिक युग तक स्त्री पुरुष के समान ही समाज में बराबर की अधिकारिणी थी। वैदिक युग के बाद के समय के अध्ययन से समाज वैज्ञानिकों की स्पष्ट धारणा रही है कि "शिकार युग से हीं समाज में स्त्री के स्थान पर पुरुष की प्रधानता बढ़ी। पुरुष को वरिये स्थान स्थान दिया जाने लगा। बहुल समाज पितृ-सत्ता मे परिवर्तित होना आरम्भ किया।"[५] यह परिवर्तन सामान्य नहीं कहा जा सकता।

आधुनिक स्त्रीवादी विमर्शों का आन्दोलन के पृष्ठभूमि के रूप में यूरोप और अमेरिका की जिस नारीवादी विचारधारा के प्रभाव के कारण ऐसा हुआ है, स्वीकार करने के बावजूद कहा जा सकता है कि स्त्री विमर्श कभी तो संसार की समस्त नारियों द्वारा समस्त पुरुषों का विरोध करने वाली विचारधारा के रूप में उभरकर सामने आया तो कभी यह स्त्री की उन्मुक्त सेक्स की वकालत करने वाले साहित्य के रूप में सामने आया। आधुनिक स्त्रीवादी विमर्श की मुख्य आलोचना हमेशा से यही रही है कि इसके सिद्धांत एवं दर्शन मुख्य रूप से पश्चिमी मूल्यों एवं दर्शन पर आधारित रहे। हालाकि जमीनी स्तर पर स्त्रीवादी विमर्श हर देश एवं भौगोलिक सीमाओं मे अपने स्तर पर सक्रिय रहती हैं और हर क्षेत्र के स्त्रीवादी विमर्श की अपनी खास समस्याएँ होती हैं। "भारत में भी स्त्री विमर्श अधिकतर आम मध्यवर्गीय सवर्ण स्त्रियों के सवालों से हीं जूझता रहा है। यह दलित स्त्री के दमन–शोषण के प्रश्नों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक आधार का समर्थन तो नहीं करता, परन्तु इस आधार की वजह से, अनवरत चल रहे दलित स्त्री की प्रताड़ना का उतना मुखर विरोध भी नहीं होता जितना दलित स्त्री के दमन के आधार को ध्वस्त करने के लिए आवश्यक है। उतना मुखर विरोध शायद सम्भव भी नहीं है। कारण दलित स्त्री के शोषण के आधार को ध्वस्त करने का अर्थ है मध्यवर्गीय सवर्ण नारीवादी की सम्पन्नता की नींव पर कुठाराघात करना। दलित स्त्री के सवालों को अपनाने के लिए नारी आन्दोलनों को अपने कार्यक्षेत्र तथा सैद्धान्तिक प्रतिबद्धता में परिवर्तन करना होगा। भारत में यह प्रश्न नारी और दलित दोनों के मुद्दों के सन्दर्भ में उठा है। क्या दलित स्त्री की स्थिति गैर–दलित स्त्री से भिन्न है? इस प्रश्न के उत्तर में मतान्तर है। एक के मत के अनुसार मनुस्मृति के अनुसार स्त्री और दलित की स्थिति एक हीं है। अतः दोनों को एकजुट होकर अपने शोषण–दमन के विरूद्ध संघर्ष करना चाहिए ..... इससे भिन्न मतालम्बियों का तर्क है कि देश के सामाजिक परिप्रेक्ष्य में दलित और सवर्ण स्त्रियों को अलग–अलग प्रकार की बाधाओं से गुजरना पड़ता है. दलित स्त्री, समाज के आखिरी हाशिए पर है। परिवार के भीतर दोनों दमन–शोषण में समानता हो सकती है,

लेकिन दलित स्त्री को कमजोर सामाजिक और आर्थिक स्थिति की वजह से भी दमित होना पड़ता है. सवर्ण औरतें भी दलित और गरीब होने की वजह से उसको प्रताड़ित करने साथ–साथ उसका शोषण कराती है।"[६]

सन् 1960 तक आते-आते समाज में सामाजिक प्रतिक्रिया स्वरुप स्त्री विमर्श का यह विचार एक नविन वैचारिक विमर्श को जन्म देता है। "सेक्स और सेक्स की भूमिका पर अब वैचारिक रूप से लेखन होने लगता है । जिसमें 1949 में सिमोन द बोउवार का 'द सेकंड सेक्स', 1963 में केट मिलेट की 'द फेमिनिन मिस्टिक', 1968 में सुलामिथ फायर स्टोन की 'डायलेक्टिक ऑफ़ सेक्स', 1971 में जूलियट मिशेल की 'वुमेन स्टेट' जैसी पुस्तकें मुख्य हैं। सेक्स और सेक्स की भूमिका जैसे शब्द अब समाज में परिभाषित होने लगे थे।"[७] इसी से जुड़े एक सन्दर्भ में फ्रेंच इतिहासकार व विचारक मिशेल फूको (Foucalt) 1980 में अपनी पुस्तक 'The History of Sexuality' में ज्ञान और सत्ता के चरित्र की बात करते हैं और बताते हैं कि किस तरह ज्ञान और सत्ता स्त्री को अनुकूलित करते हैं। फूको कहते हैं कि 'It is important to examine the different ways in which women experience their bodies. Bodies are given role as a site for political struggle and shaped and trained by the networks of social and political power in which they exist. For example, men tend to be thought to take up space larger than women, while women are socialized to take up as little space as possible.' शरीर एक 'ऑब्जेक्ट' है जिसे समाज, राजनीति व सत्ता अपने अनुसार बनाती व प्रशिक्षित करती है। जैसे पुरुष हमेशा से समाज में अपने लिए अधिक 'स्पेस' चाहता है वहीं स्त्री थोड़े से ही में खुद को संतुष्ट पाती है, क्योंकि उसे ऐसी सामाजिक निर्मिती दी जाती है की वह बड़ा न सोच सके।"[८]

स्त्री–विमर्श में स्त्री शिक्षा की अपरिहार्यता पर जोर दिया गया और यह माना गया कि स्त्रियों की दशा सुधारने में स्त्री शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। परन्तु इस दिशा में यथार्थवादी दृष्टिकोण से विचार नहीं किया गया। वस्तुतः आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, चेतना और सर्जना के बीचों-बीच खड़ी दिखाई देती है। पश्चिम के प्रभाव के कारण इस काल में नई चेतना का विकास हुआ। हिंदी साहित्यकारों ने स्त्री-पात्रों के प्रति पूरी संवेदना के साथ उनकी महानता का चित्रण किया है। औरतों को लेकर पिछले ५० वर्षों में काफी काम हुआ है। मगर समाज-शास्त्र की दृष्टि से स्त्री विमर्श हिंदी साहित्य में बहुत बाद में बहस का मुद्दा बना। डॉ ओमप्रकाश लिखते हैं – सन १९७४ में 'प्रगतिशील महिला संगठन' का गठन हुआ इसके बाद महिला मुद्दों को अख़बारों पत्रिकाओं आदि में प्रमुख स्थान मिलने लगा।

आधुनिक विश्व साहित्य में स्त्री विमर्श आज सर्वाधिक चर्चित विषय है। सिमोन द बोउआर की 'द सेकेण्ड सेक्स' का हिन्दी अनुवाद ('स्त्री उपेक्षिता') कर प्रभा खेतान ने भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श की नींव रखी। इससे पूर्व की रचनाकार सिमन्तनी उपदेश ने इसका आधार बनाया, और इन्हीं से प्रेरित होकर आधुनिक लेखिकाएँ स्त्री के प्रति समाज की मानसिकता व रुढियों पर आधारित पारिवारिक बंधनों से मुक्ति की आकांक्षा में प्रयत्नशील नज़र आती हैं। भारत में विमर्शात्मक लेखन उन्नीसवीं सदी की शुरुआत से हीं चली आ रही है। 'सरला : एक विधवा की आत्म जीवनी', 'एक दुखिनी बाला' के नाम से प्रकाशित हुई, किन्तु सन २००७ में प्रकाशित प्रभा खेतान की आत्म कथा 'अन्या से अनन्या' आज का स्त्री लेखन है जो एक विवाहित पुरुष से

अपने संबंधों को साहस के साथ स्वीकारती है। यही नहीं इन्होने 'इन्सेस्तर' जैसे नाजुक विषय पर भी मन से लिखा। वस्तु सत्य यह कि यहीं से आरम्भ होता है भारतीय साहित्य में स्त्री विमर्श प्रभा खेतान लिखती है कि- "ऐसा नहीं है कि आपने स्त्री-लेखन में अन्तर्निहित खामोसी को नहीं पहचाना है. यह एक ऐसी ख़ामोशी है जो स्त्री के लेखन-संसार में शुरू से आखिर तक छाई रहती है।"[९] वहीँ "स्त्री-लेखन का एक और महत्त्वपूर्ण उद्देश्य स्त्री की विभिन्न भूमिकाओं के बारे में मानव समाज को परिचय देना है, जीवन के उन अँधेरे कोनों पर भी प्रकाश डालना जिसकी पीड़ा स्त्रियों ने सदियों से झेली है।"[१०] वह आगे कहती है- "नारीवाद का सम्बन्ध स्त्री-मुक्ति से है।"[११] कहने का तात्पर्य यह कि निर्विवाद रूप से भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति अंतर्विरोधों से भरी हुई है। परंपरा से नारी को शक्ति का रूप माना गया है, पर आम बोलचाल में उसे अबला कहा जाता है। भारतीय समाज में स्त्री की इस विरोधाभासपूर्ण स्थिति की अनुगूंज ऋग्वेद की ऋचाओं से ही प्रारंभ हो जाती है जिसमें कहीं तो उसे अत्यंत श्रेष्ठ मानते हुए पूज्य बताया गया है, तो कहीं कामवासना का मूर्त रूप मानते हुए मुक्ति मार्ग में बाधक, त्याज्य और मूर्ख। मध्यकालीन भक्त कवियों कबीर, दादू, तुलसी, जायसी और सूर आदि (जिन्होंने अपने काव्य में मानुष सत्य को सर्वोपरि माना) के यहां भी स्त्री को लेकर अंतर्विरोधी उक्तियां विद्यमान हैं। आज भी हमारे समाज और साहित्य में कमोबेश स्त्री के प्रति यही अंतर्विरोधी रवैया मौजूद है। एक तरफ उसे देवी का स्थान दिया जाता है, और दूसरी ओर उसे पुरुष के पथभ्रष्ट होने का कारण भी माना जाता है। इन दो ध्रुवांतों के बीच इंसानी हकीकत कहां है?

मार्ग्रे केम्पे (इन्हें अंग्रेजी की पहली आत्मकथा लेखिका होने का गौरव प्राप्त है) ने ईश्वर को प्रेमी अथवा अत्यंत प्रिय मित्र के रूप में चित्रित किया। एमिलिया लन्यर ने (1611 ई.) बताया कि क्राइस्ट का जन्म स्त्री से हुआ, उनका पालन-पोषण भी स्त्री ने किया। उन्होंने न केवल स्त्री की आज्ञा का पालन किया बल्कि स्त्रियों के दुख-दर्द को बांटा। इस प्रकार क्राइस्ट को मां, पति तथा हमदर्द के रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों ने समाज में अपने लिए एक सम्मानजनक स्थान की मांग की। एक ऐसा सम्मानजनक स्थान जो भारतीय स्त्रियों को (विरोधाभासपूर्ण या व्यावहारिक धरातल पर लगभग छद्म होते हुए भी) पहले से ही प्राप्त था। आधुनिक युग में पश्चिम में स्त्री अधिकारों की सारी लड़ाइयां स्त्रियों द्वारा खुद लड़ी गईं। उनका प्रतिपक्ष स्पष्ट था - पुरुष वर्ग, जो स्त्री-सरोकारों की लड़ाई में सबसे बड़ा बाधक था। पश्चिम में स्त्री-शिक्षा के लिए महिलाओं ने जो मुहिम चलाई उसमें बॉथ्सुआ माकिन, मार्ग्रेट कैवेंडिश, मेरी ऑस्टेल, कैथरीन मैकाले और मेरी वॉलस्टोनक्राफ्ट का नाम प्रमुख है। कालांतर में पश्चिम में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में दो पुरुष सामने आए - विलियम थॉमस और जॉन स्टुअर्ट मिल - जिन्होंने स्त्री-अधिकारों की लड़ाई में न केवल उनका साथ दिया, बल्कि उसके प्रेरणा श्रोत भी बने। विलियम थॉमस ने 'अपील ऑफ वन हाफ ऑफ द ह्यूमन रेस' (1825) में विवाहित स्त्रियों की दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला। जॉन स्टुअर्ट मिल ने 'द सब्जेक्शन ऑफ वुमन' (1869) में बताया कि स्त्रियों की अधीनता न केवल गलत है बल्कि संपूर्ण मानव समुदाय की उन्नति में बाधक है. दूसरी ओर भारत में आधुनिक युग में स्त्री सरोकारों की सारी लड़ाइयां एक मुहिम के रूप में नवजागरण काल के पुरुष समाज सुधारकों द्वारा शुरू की गईं। राजा राममोहन राय, मृत्युंजय विद्यालंकार, जोतिबा फुले, ईश्वरचंद विद्यासागर, बेहराम मलबारी, महादेव रानाडे आदि ने स्त्रियों से जुड़े लगभग हर मुद्दे को उठाया और स्त्रियों को समाज में सम्मानजनक स्थान दिलाने का प्रयास किया। नवजागरणकालीन ऐसे स्त्री नामों की लंबी सूची है जो उस समय

रमाबाई रानाडे, पंडिता रमाबाई सरस्वती, नवाब फेजुनेसा चौधरानी, सावित्री फुले, रुक्या, सरोजनी नायडू, ज्योतिर्मयी देवी, अबला घोष आदि का नाम प्रमुख है।

हर देश में स्त्री संघर्ष का अपना इतिहास है जो अपने लिए एक अलग सैद्धांतिकी की मांग करता है। इसके आधार पर ही वहां के स्त्री-विमर्श को समझा जा सकता है और इस बात को स्त्री-विमर्श के अनेक पैरोकारों ने बहुत पहले ही महसूस कर लिया था। यहां जिक्र करना जरूरी है कि 1960-70 के दशक में पश्चिम के नारीवादियों का प्रिय नारा था 'सिस्टरहुड इज पावरफुल'। निश्चय ही इस नारे ने एक स्त्री को दूसरी स्त्री से जोड़ा। इसने वर्ग, नस्ल, भाषा और देश की सीमाओं से अलग हर स्त्री को स्त्रीत्व की नियति से जोड़ कर देखा। यह महसूस किया जाने लगा कि सभी स्त्रियों को साथ लेकर चलना हमारा लक्ष्य नहीं होना चाहिए बल्कि सभी पुरुषों को साथ लेकर चलना हमारा लक्ष्य होना चाहिए तभी स्त्री-पुरुष में सामाजिक समानता स्थापित हो पाएगी। नताशा वाल्टर की किताब के प्रत्युत्तर में जरमेन ग्रीयर की 'द होल वुमन' (1999) आई। इसमें जरमेन ग्रीयर ने दिखाया कि किस प्रकार पहले के नारीवादियों के प्रयास से महिलाओं को पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हुए। अत: उन नारीवादियों के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। इससे स्त्री-विमर्श की सूक्ष्मताओं को समझा जा सकता है। पश्चिमी स्त्री-विमर्श में वहां का पुरुष कठघरे में खड़ा है लेकिन भारतीय संदर्भ में हम पुरुषों को वैसे कठघरे में नहीं रख सकते। भारतीय स्त्री-विमर्श में पुरुषों की भूमिका कितनी जटिल और उलझी हुई है इसे निम्न पंक्तियों में देखा जा सकता है- ''सदियों से तुम मुझे पहेली मानते रहे/ पर, असली पहेली तो तुम हो/ कभी खतरनाक दुश्मन, जो मेरे अस्तित्व को ही खत्म कर देना चाहता है/ कभी सहृदय मित्र, जो मेरा हित मुझसे भी ज्यादा समझता है/ अबूझ से तुम अब भी!''

हिंदी साहित्य का आदि-काव्य धार्मिक उपदेशों एवं वीर-गाथाओं के रूप में लिखा गया है पहला वीरकाव्य के रूप में दूसरा मधुर भक्ति के रूप में। तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण के अनुसार वीरगाथा काल में नारी के कामिनी एवं वीरांगना रूप दृष्टिगत होते हैं. इस समाज के काव्य में "जाकी बिटिया सुन्दर देखी ताहि पै जाए धरे हथियार।"[१२] उस समय स्त्री संघर्ष के बीज के रूप में थी क्योंकि स्त्रियों के कारण राजा-महाराजाओं के भी युद्ध हो जाते थे। वीर-पत्नी अपने जीवन की सार्थकता अपने स्वामी के वीरोचित कर्मों में ही समझती थी। यदि उसका पति वीरगति को भी प्राप्त हो जाए तो वह उसके साथ ही मरने को तैयार हो जाती थी। काव्य में नारी का ओजस्वी रूप कहीं नहीं मिलता। जैन आचार्यों, सिद्धों, नाथों ने भी नारी के प्रति विकृति के स्वर को मुखरित किया है। हिंदी साहित्य का भक्ति काल राजनीतिक दृष्टि से विक्षोभ का काल था, जिसके फलस्वरूप कवि का मानस भगवान का आश्रय खोजने लगा। इस काल के काव्य में नारी चित्रण मुख्यतः दो रूपों में हुआ। एक ओर वह उदात्त आदर्श आराध्य के रूप में दूसरी ओर एक सामान्य नारी के रूप में।

भक्ति काल के निर्गुण संत कवियों ने नारी को मुक्ति मार्ग की बाधा बताया है। कबीर कहते हैं कि "नारी की छाया परत अँधा होत भुजंग।" सुंदरदास के अनुसार "नारी विष का अंकुर, विष की बेल है।" इन सबसे यही विदित होता है कि इन्होंने नारी के केवल कामिनी रूप को ही देखा है, उसके मातृत्व रूप एवं पतिपरायण रूप को नहीं। तुलसीदास जैसे कवियों ने नारी को ताड़न का अधिकारी मानते हुए उसे पशुतुल्य स्वीकारा है। शायद ही ऐसा कोई कवि होगा जिसने स्त्रियों के प्रति इतने सम्मानजनक शब्दों का प्रयोग किया हो. सूफियों के अनुसार नारी प्रेम एवं उपासना की वस्तु है। उसे योग, त्याग, तपस्या तथा उत्सर्ग द्वारा ही पाया जा सकता है। यह

शायद इस्लाम का प्रभाव हो। उसका प्रेम लौकिक-अलौकिक दोनों ही है। उस समय कृष्णभक्त मीराबाई का पितृसत्तात्मक समाज के विरुद्ध जाकर अपनी निजता के अनुरूप जीवन यापन करना बहुत आश्चर्य की बात की थी। मीरा की भावना, नारीत्व की भावना थी, जो पूर्णत्व चाहती थी। ऐसे काव्य में प्रेम-विरह है, विलास से अर्पित नारी का चित्र रुचिर तो लगता है किन्तु उससे नारी के स्वतंत्र व सक्षम अस्तित्व का बोध कदापि नहीं हो पाता और न उससे उसका समग्र व्यक्तित्व ही उभर पाता है।

रीतियुगीन कवियों ने रूप-यौवन के आकर्षण की आंधी में नारी के रूप का ही वर्णन किया है। नारी ही रीतिकाल में कवि की समस्त भावनाओं का केंद्र है, परन्तु इन रीतिकवियों केशव, बिहारी, घनानंद, देव, मतिराम, सेनापति आदि को नारी का केवल कामिनी रूप ही प्रिय था। रीतियुगीन कवियों ने रूप-यौवन के आकर्षण की आंधी में नारी के रूप का ही वर्णन किया है। रीतिकाल के कवियों की दृष्टि केवल नारी के ही नख-शिख उसकी मांसल देह पर ही ठहरी थी।

हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय समाज की विचारधारा में कुछ परिवर्तन आया और पाश्चात्य साहित्य में वर्णित मानव-प्रेम ने भी इन कवियों को प्रभावित किया। श्रीमती एनी बेसेंट, जी. के. देवधर, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, चन्दर सेन, महात्मा गांधी आदि समाज सुधारकों ने भारतीय नारी की पतनोन्मुख अवस्था को सुधारने का प्रबल समर्थन दिया। भारतेंदु जी ने स्त्री-शिक्षा के प्रचार हेतु 'बालवबोधिनि' नामक पत्रिका का प्रकाशन किया तथा नर-नारी समानता एवं नारी मुक्ति का नारा दिया। इस युग में कवियों ने इस बात पर बल दिया है कि नारी ही मानव एवं समाज का सुधार कर सकती है। इस विषय में राय देवीप्रसाद पूर्ण की पंक्तियाँ हैं - "नारी के सुधारे होत जग में प्रसिद्ध, नारी के संवारे होत सिद्ध धन बल है।" तात्पर्य यह है कि आधुनिक काल में स्त्री को थोड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाने लगा। उसे 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' अर्थात माता और जन्म भूमि स्वर्ग से भी बढ़कर है। इस युग के कवियों में मानवतावादी परवर्ती स्त्री-पुरुष में समानता की भावना, पीड़ितों के प्रति सहानुभूति एवं मानवीय आदर्शों के रूप में थी। इन कवियों ने राधा-कृष्ण के प्रेम को आदर्श-प्रेम बताकर उनकी वंदना करते हुए की है, साथ ही रीतियुगीन नायक-नायिका के श्रृंगार, काम विलास आदि की निंदा भी की है। दिवेदी युग में कवियों ने माना समाज की उन्नति नारी को सम्मान दिए बिना हो हो नहीं सकती। इस युग में प्रथम बार नारीत्व की उच्च भावना का विकास हुए देखते हैं। महावीर प्रसाद दिवेदी ने नारी के पक्ष का समर्थन करते हुए कहते हैं – "पति को देव तुल्य हम माने, बच्चों की भी दासी हैं, सेवा सदा करे नहीं सोचें भूखी हो या प्यासी, हे भगवान हाय तिस पर भी उपमा कैसे पाती हैं, ढोल-तुल्य ताड़न अधिकारी, हम बनाई हम जाती है।"[१३] छायावादी काव्य मूलतः श्रृंगारी काव्य ही है, फिर भी इन कवियों ने नारी को मान, पत्नी, प्रेमिका के रूपों में किया है. प्रसाद की कामायनी में श्रद्धा का पत्नी और माँ का रूप निराला का विधवा में वैधव्य पीड़ित पत्नी, 'सरोज स्मृति' में पुत्री रूप या कुछ अन्य कविताओं में दिव्य शक्तिमयी कल्याणी रूप आदि छायावादी कवियों ने जो कवितांए लिखीं। उनमें प्रेम की भावना पावनता, एकनिष्ठा, गहनता है। पति-पत्नी का सदाचार ही नहीं, अतः आधुनिक युगीन कवियों ने अपनी कृतियों में नारी के महत्त्व की प्रतिष्ठा की आज की नारी में स्वाभिमान तथा आत्म समर्पण की भावना ही प्रमुख है। "आधुनिक हिन्दी में स्त्री–सम्बन्धी बहस, चिंतन या लेखन की जो तस्वीर बनती है, वह १९६७ में प्रकाशित कृष्णा सोबती के 'मित्रों मरजानी' की देन है।"[१४]

अब तक, "ऐसा लक्षित हुआ है कि लिंगभेद को विशेषाधिकारों के लिए अयोग्यता व पराधीनता का चिह्न न बनाकर दुनिया को जो लाभ होंगे वे व्यक्तिगत होने की अपेक्षा सामाजिक अधिक है, जिनमें सामूहिक विचार व कार्यशक्ति में इजाफा और स्त्री–पुरुष सम्बन्धों की सामान्य स्थितियों में सुधर सामिल है।"[१५] डॉ मीनाक्षी जोशी लिखती हैं- "सामाजिक मर्यादाएं बुरी नहीं होती, स्त्री–पुरुष एक–दूसरे के गुलाम नहीं हो सकते।"[१६] स्त्री विमर्श का यह मतलब नहीं है कि "पुरुष बहिष्कार, पुरुष से टकराव या लुकाठी लेकर घर फूंक दिया जाए। स्त्री विमर्श का मतलब है सह अस्तित्त्वा की भावना। स्त्री सन्दर्भ या स्त्री मुक्ति का मतलब है स्त्री को समानता का, बराबरी का दर्जा दिया जाए। यह दर्जा उसे पुरुष नहीं देगा। स्त्री को आगे बढ़कर लेना है।"[१७] कहा जा सकता है कि– "हम सभी एक समाज में रहते हैं और इस असंख्य प्राणियों के समाज में यह विदित है कि कोई भी दो प्राणी अपनी शारीरिक और बौद्धिक क्षमताओं, प्रतिभाओं और उपलब्धियों में पूर्णरूप से समान नहीं हो सकते। यही स्त्रियों को अधिकारों से वंचित रहने की स्थिति पैदा करती है। जब पीढ़ी-दर-पीढ़ी सदियों तक चलती है तो एक ऐसी अवांछनीय स्थिति पैदा होती है जिसमें ये सभी वंचित वर्ग मुख्यधारा से कटकर हाशिये पर चले जाते हैं। वहीं, वह वर्ग जो संसाधनों तक निरंतर पहुँच बनाने में सफल रहा है, सम्पन्न और शक्तिशाली होता रहता है। वंचित वर्गों के लिए यह स्थिति और भी अधिक कष्टकारी हो जाती है। विषमता के कारण समाज दो वर्गों में विभाजित हो जाता है। एक वह वर्ग जिसकी पहुंच संसाधनों तक है तथा दूसरा वंचित वर्ग। यह विषमता और भेदभाव वंचित वर्गों के लिए अमानवीय परिस्थितियों का निर्माण करते हैं, साथ ही साथ उनमें समाज से एक अलगाव की भावना की उत्पत्ति होती है, और मुख्य समाज का हिस्सा न होने की पीड़ा होती है।"[१८] ऐसी परिस्थितियाँ किसी भी राज्य की समग्रता के लिए बहुत बड़ा खतरा होती हैं और चूँकि इन दोनों वर्गों की मागों में समरूपता नहीं होती। नव-सामाजिक आंदोलनों का अस्मिता-विमर्श अकादेमिक चिंताओं से संचालित है। किसी भी परिस्थिति में अस्मिता-विमर्श अपने आप में सत्ता-विमर्श भी होता है, जैसा कि प्रभा खेतान भी मानती हैं। स्त्री विमर्श से असुरक्षा का आतंक ज़ुरा है जिस दिन यह भाव विखंडित होगा उस दिन स्त्री विमर्श के पैरोकारों का प्रयास सफल मन जायेगा। "नारी पुरुष सत्तात्मक समाज में व्याप्त विषमता के विरूद्ध विद्रोह करते हुए अपनी देह चेतना एवं अस्तित्त्व के गहरे विमर्श से कहीं आगे पूंजीवादी व्यवस्था एवं उपयोगवादी दृष्टी को बदलने के लिए प्रयत्नशील दिखाई पड़ती है।"[१९] स्त्री विमर्श को "स्त्री की स्थिति अधिनास्थाता की है।"[२०] तथाकथित भारतीय सभ्य समाज में यदि स्त्री अपनी अस्मिता के लिए आगे आना चाहती है तो उसे कुछ पुराणी परमपराओं और मान्यताओं के जड़ को खोदना होगा, जिससे वह आ सकेगी।

निष्कर्ष

हम यह कह सकते हैं कि आज के बदलते वैश्विक परिवेश में श्लील–अश्लील, मर्यादा, नैतिकता और चारित्रिक दृढ़ता के पैमाने महिलाओं को लेकर बदलने की जरूरत थी और वे बदले भी हैं। यौन–सुख को स्त्री के दमन का आधार बनाया जाता रहा है, इससे भी महिलाओं ने इनकार किया है। उसके व्यक्तित्व के विकास के लिए जो बाड़ें, बंदिशें थीं, उनको तोड़ा है। अब वह हर कहीं उन क्षेत्रों में है, जिनको अब तक पुरुषों के लिए आरक्षित माना जाता रहा है। यह वैश्विक परिवेश और समाज के लिए एक स्वागतयोग्य कदम है, यह स्त्री विमर्श का महत्त्वपूर्ण इलाका कहा जा सकता है। "जिवन और साहित्य दोनों क्षेत्र में स्त्री विमर्श नयी उभरती हुई दृष्टि है। यह

निःसन्देह विचारोत्तेजक है। यह साहित्य–सृजन और उसके विवेचन–मूल्यांकन को किस सीमा तक और किस रूप में प्रभावित करती है या बदलती है, यह देखने के लिये प्रतीक्षा करनी होगी।"[२१]

शोध-सन्दर्भ :

१ डॉ. पुनीत बिसारिया – स्त्री विमर्श के सुलगते प्रश्न, पृष्ठ – ३०, समकालीन विमर्श स्त्री) मुद्दे और बहस :, दलित एवं आदिवासी के सन्दर्भ में (–रवि कुमार गौड़ (सं) , महेंद्र प्रताप सिंह, प्र२०१४ .सं ., अनंग प्रकाशन, बी–१०७१/, गली मंदिर वाली, समीप रबड़ फैक्ट्री, उत्तरी घोंडा, दिल्ली – ११० ०५३

२ संगीता रावत – प्रोका .लीचरण 'स्नेही' के काव्य में स्त्री विमर्श, पृष्ठ – १९३, समकालीन विमर्श मुद्दे और : स्त्री) बहस, दलित एवं आदिवासी के सन्दर्भ मेंकुमार गौड़ रवि (सं) -(, महेंद्र प्रताप सिंह, प्र२०१४ .सं ., अनंग प्रकाशन,
बी–१०७१/, गली मंदिर वाली, समीप रबड़ फैक्ट्री, उत्तरी घोंडा, दिल्ली – ११० ०५३

३ गोपा जोशी– भारत में स्त्री असमानता, पृष्ठ – ४, सं सं .– २०११, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – ११० ००७

४ प्रगति सक्सेना (अनुवादक)– स्त्रियों की पराधीनता, (The subjection of women –By John Stuart Mill(, पृष्ठ – १८, तृ .सं.– २०१३, राजकमल प्रकाशन प्राबी १ .लि ., नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – ११० ००२

५ जी थम्पसन .– स्टडीज इन एन्सिएंट ग्रीक सोसाइटी – (डी चट्टोपाध्याय .पी .– लोकायात्त, पृष्ठ – २४१-२४२, सं१९८१ -, लोकायत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली०५५ ११० -, में उद्धृत(

६ भावना मासीवाल – जेंडर की अवधारण और अन्या से अनन्या – स्त्रिकल, वेब पत्रिका

७ गोपा जोशी – भारत में स्त्री असमानता, पृष्ठ – ७, सं सं .– २०११, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली – ११० ००७

८ भावना मासीवाल – जेंडर की अवधारण और अन्या से अनन्या – स्त्रिकल, वेब पत्रिका ८ ,

९ अरविन्द जैन(य अध्ययनलेखन का समाजशास्त्री-महिला) अस्तित्व और अस्मिता :औरत –– पृष्ठ – ११, (भूमिका से – प्रभा खेतान(, प्र२००१ .सं., राजकमल प्रकाशन प्राबी नेताजी सुभाष-१ .लि ., मार्ग, नई दिल्ल -११० ००२

१० उपर्युक्त – पृष्ठ – २६

१० उपर्युक्त – पृष्ठ – २६

११ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल – हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ – ८२, नगरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी

१२ महावीर प्रसाद दिवेदी रसज्ञ रंजन -, पृष्ठ – ६०, संस्करण; १९२०, साहित्य रत्न भंडार, आगरा,

१३ आजकल, पृष्ठ – ४५, अंक – मार्च – २००७

१४ प्रगति सक्सेना) अनुवादक (– स्त्रियों की पराधीनता)The subjection of women- By John Stuart Mill (– पृष्ठ – १२६, तृ सं.– २०१३, राजकमल प्रकाशन प्राबी १ .लि ., नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली – ११० ००२

१५ डॉ. मीनाक्षी जोशी – समय, साहित्य और समाज पृष्ठ – २२, प्र आ .– २०११, विश्वभारती प्रकाशन, सिताबुल्दी, नागपुर – ४४० ०१२

१६ डॉ. शशिकला त्रिपाठी – स्त्री विमर्श का मतलब पुरुष बहिष्कार नहीं, (सम्पादकस्त्री – कल्पना वर्मा (विविध पहलू : विमर्श, पृष्ठ – ४७, द्वि .सं .२०११, लोकभारती प्रकाशन, १५ – ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद – १

१७ प्रफुल्ल कोलख्यान स्मिता क्या और क्यों -, जनमन, १८ फरबरी २०१६, वेव पत्रिका

१८ अलका प्रकाश– नारी चेतना के आयाम, पृष्ठ ९, पु.मु .– २०१३, लोकभारती प्रकाशन, १५ – ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहबाद – १

१९ डॉ. प्रभा खेतान– स्त्री उपेक्षिता, पृष्ठ – १९, नवीन सं२००२ ., हिन्द पॉकेट बुक्स प्रा.ली ., जे–१०, जोरबाग लेन, नई दिल्ली – ११० ००३,

२० डॉ. नगेन्द्र (.सं)– हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ४३६, ७२वाँ संस्करण, जून– २०२०, मयूर बुक्स, ४२२६/१ अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली – ११० ००२

-डॉ. कामाख्या नारायण सिंह